# चतुर्थ अध्यायः
# हिंदी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान

4.1 स्वाधीनता की चेतना

4.2 अंग्रेजी राज की आलोचना

4.3 हिंदी की जातीय चेतना के निर्माण में योगदान

4.4 हिंदी गद्य का निर्माण

4.5 हिंदी का आलोचनात्मक विवेक

# चतुर्थ अध्याय

# हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान

## 4.1 स्वाधीनता की चेतना-

उन्नसवीं सदी के अन्तिम चरण में ही भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण हो रहा था। देश के कोने-कोने से राष्ट्रीय जागरण की लहरें उठ रही थीं। अंग्रेजों का विरोध जितना ज्यादा बढ़ता जा रहा था। दादा भाई नॉरौजी, लाला लाजपत राय, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, बाल गंगाधर तिलक जैसे सेनानी राष्ट्रीय जागरण की ज्योति जलाए हुए थे। रामकृष्ण परमहंस विवेकानंद, दयानन्द, देवेन्द्रनाथ टैगोर जैसे मनीषी अपनी अमृतवाणियों से जनजागरण का गान कर रहे थे। पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए समस्त देश छटपटा रहा था। कलकत्ता, बम्बई और लाहौर उस युग के राष्ट्रीय संचेतना के केन्द्र बन गए थे। साहित्य युग का दर्पण होता है। उन्नीसवीं सदी में जो महत्व कलकत्ता का था वह अन्य किसी नगर का नहीं था। इसी कलकत्ता से राष्ट्रीयता के अग्रदूत गुप्तजी ने हिन्दी जगत में जिस सक्रिय और सप्रमाण राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की वह अन्य कहीं मिलनी दुर्लभ है। भारतेंदु की इस विरासत को आगे बढ़ाने में गुप्तजी ने विशिष्ट भूमिका निभाई। श्री मुनीश्वर झा के शब्दों में:- ''यदि भारतेन्दु हिन्दी गगन के पूर्णेन्दु थे तो बालमुकुंद भारत और भारती के ''मित्र। दोनों आलोक पुरुष थे। दोनों एक ही परम्परा में आये थे, किन्तु दोनों की भूमिका भिन्न भी दोनों के रूप भिन्न थे। दोनों ही अंग्रेजी शासन की दुर्नीति के विरोधी थे। किन्तु एक में क्षोभ था, दूसरे में आक्रोश, एक में कवि की भावुकता थी, दूसरे में सैनिक की कर्मठता। दोनों का अपना-अपना महत्व है। दोनों हमारे राष्ट्रीय नवजागरण के अमर गायक थे और राष्ट्र निर्माण में दोनों ने अपनी रीति से अर्ध्य चढ़ाया था।''[1]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 18

गुप्त जी का सम्पूर्ण साहित्य यथा निबंध, काव्य, टेसू गीत उनके राष्ट्रीय विचारों का संवहन है। वे राजनीतिक दृष्टि से जागरूक पत्रकार थे। राष्ट्रीय समस्याओं पर बड़े ही निर्भीक ढंग से उन्होंने लेखनी चलाई। 'शिवशंभु के चिट्ठों का अपना राजनीतिक महत्व तो है ही साथ-साथ वे राष्ट्रीय जागृति का भी माध्यम बने। श्री झा के शब्दों में ''बालमुकुंद जी बड़े निर्भीक थे। चापलूसी उन्हें पसंद न थी। महत् उद्देश्य ही उनके लिए जीवन था। देशवासियों में देशभक्ति की भावना उद्दीप्त करना वे चाहते थे। जन कल्याण उनका आदर्श था।''[1] बालमुकुंद गुप्त जिस मशाल को लिए राष्ट्रीय जागरण की रोशनी फैला रहे थे वह मशाल 'भारतमित्र' था। यद्यपि भारतमित्र से पहले उन्होंने उर्दू और अन्य हिंदी पत्रों में भी कार्य किया था, परन्तु उनका ख्याति का आधार स्तंभ भारतमित्र ही बना। इस पत्र के बारें में डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र का कहना है, ''बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की बंगीय हिंदी पत्रकारिता का नेतृत्व 'भारत मित्र' संपादक बाबू बालमुकंद गुप्त के हाथ में था, जिन्हें अपनी राष्ट्रीय निष्ठा और उग्र स्वर के कारण कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह के पत्र 'हिन्दोस्थान' की नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। 16 जनवरी 1899 को गुप्त जी ने 'भारतमित्र' का संपादन भार संभाला इसके संचालन का दायित्व भी उन्हीं पर था। अपनी रुचि के अनुसार 'भारतमित्र' को उन्होंने नयी व्यवस्था और नया रुप दिया। उन्होंने पत्र का आकार बड़ा किया और मूल्य कम कर दिया। गुप्तजी चूंकि युग चेतना के प्रति सचेत थे और उनकी राष्ट्रीय निष्ठा बलवती थी, इसलिए स्वाभाविक था कि राष्ट्रीय स्वर की रचना ही पत्र का उद्देश्य हो''[2] 'हिन्दोस्थान' और 'हिन्दी बंगवासी' के संपादन काल में गुप्त जी ने जो कुछ लिखा वह जागरण का आरंभ था, परन्तु भारतमित्र तक आते-आते उसकी ज्योति और तीव्र हो गई थी। ''कलकत्ते का भारतमित्र सम्पूर्ण

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा : विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त, एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 19

2 (सं.) वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ.106

हिन्दी संसार के आलोक का उत्स बन गया। उस पत्र द्वारा गुप्त जी ने राष्ट्रीय उत्थान में सर्वतोभावेन योग दिया।...

उनके लेखों से राष्ट्रीयता की प्रचण्ड लहर फैल गई जिससे साम्राज्यवाद का हृदय कांप उठा।''[1]

गुप्तजी की स्वतंत्र एवं निर्भीक चेतना के कारण ही 'भारतमित्र' उस समय का बहुत शक्तिशाली पत्र बन गया था। इस पत्र के कारण ही गुप्त जी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा की और विदेशी भावना के उमड़ते प्रभाव को रोका। गुप्त जी ने अनेक व्यंग्य प्रधान निबंध लिखे। इन निबंधों में अंग्रेजी शासन के चाटुकारों पर भी व्यंग्य हैं जो राजभक्ति की आड़ में देश की पीठ में छुरा चला रहे थे। श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है, ''बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पूरे देश में जो राष्ट्रीयता उभर रही थी, उसका सबसे पहला राजनीतिक स्वरूप हिंदी पत्रों में हमें 'भारतमित्र' में बड़ी प्रखरता के साथ दिखाई देता है। श्री बालमुकंद गुप्त 'बंगवासी' छोड़कर 'भारतमित्र' के संपादक सन् 1899 में ही हो गए थे। उनके आते ही 'भारतमित्र' का स्वर बदल गया।''[2]

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में कर्जन अपने कुकृत्यों के लिए प्रसिद्ध रहा। गुप्त जी के व्यंग्य बाणों का शिकार भी कर्जन ही हुआ। कर्जन ने नाना प्रकार के राष्ट्रविरोधी कार्य किए जिनमें से एक था बंग-भंग। बंगालियों की राष्ट्रीयता को तोडने के लिए कर्जन ने बंगाल के विभाजन की योजना बनाई। परन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। बंग-भंग से सारे भारत में एक नई स्पिरिट (भावना) पैदा हो गई। बंग विच्छेद द्वारा भारत-विभाजन का बीज आरोपित करके ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि कर्जन इंग्लैंड जा चुका था। समस्त भारत ने बंगाल के बॅटवारे का विरोध और बंगाल के एकीकरण का समर्थन किया, किन्तु निरंकुश अंग्रेज शासन ने एक नहीं

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा : विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 22

2 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिंदी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, 117-118

सुनी। फलतः समस्त बंगाल अंग्रेज विरोधी आंदोलनों का केन्द्र बन गया। स्वदेशी वस्तु प्रयोग और विदेशी वस्तु त्याग की उग्र भावना इस आंदोलन का मूल स्वर था। स्वदेशी आंदोलन के समर्थन में गुप्तजी ने 'ताऊ और हाऊ', स्वदेशी आंदोलन जैसी कविताएं और बंग विच्छेद जैसे निबंध लिखे। डॉ. नत्थन सिंह के शब्दों में - ''गुप्त जी ने बड़ी तन्मयतापूर्वक इस आन्दोलन को वाणी देकर हिन्दी पत्रकारिता को राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ बड़ी गहराई से जोड़ा था। स्वदेशी आन्दोलन शीर्षक में वह बंग विच्छेद पर मत व्यक्त करते हैं - ''आँगन में दीवार बनाई, अलग किये भाई से भाई।''[1]

बंग-भंग के विरोध में सम्पूर्ण बंगाल में असंतोष की लहर फैल रही थी। 'वन्दे मातरम्' चारों तरफ से गूंज रहा था। पुलिस की लाठियां चल रही थीं। स्वतंत्रता सेनानी जेल जा रहे थे। गुप्त जी के अनुसार इन सेनानियों ने जेल जाकर जेल का मान बढ़ाया। जेल को उन्होंने पवित्र तीर्थ माना था। गुप्त जी के अनुसार, ''जो जेल चोर डकैतों, दुष्ट हत्यारों के लिए है जब उसमें सज्जन साधु, शिक्षित, स्वदेश और स्वजाति के शुभचिन्तकों के चरण स्पर्श हो तो समझना चाहिये कि उस स्थान के दिन फिरे। ईश्वर की उस पर दया दृष्टि हुई। साधुओं पर संकट पड़ने से शुभदिन आते हैं। इससे सब भारतवासी शोक सन्ताप भूलकर प्रार्थना के लिये हाथ उठावें कि शीघ्र ही वह दिन आवे कि जब एक भी भारतवासी चोरी, डकैती दुष्टता, व्यभिचार, हत्या, लूट खसोट, जाल आदि दोषों के लिए जेल न जाये। जायें तो देश और जाति की प्रीति और शुभचिन्ता के लिए।''[2] गुप्तजी के अनुसार सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने बंगाल की जेल को पवित्र किया, बाल गंगाधर तिलक ने बम्बई की जेल को तीर्थ बनाया तो यशवन्त राय अथावलें ने लाहौर जेल की भूमि को पावन बनाया। इसी जेल में 'कृष्ण'

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुदं गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.246

2 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खण्ड-3), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुड़गांव, 2013, पृ.114

ने जन्म लिया था। जेल की भूमि की धूल मस्तक पर चढ़ाने योग्य है। देशप्रेम में जेल जाना गर्व और स्वाभिमान की बात है।

गुप्तजी ने प्रत्येक राष्ट्रविरोधी तत्व पर प्रहार किया चाहे वह अंग्रेज अधिकारी हो, चाहे धनी सामन्त हो या फिर देशी राजा-महाराजा अथवा मुनाफा खोर व्यापारी हो। 'गुप्तजी' के निबंध, काव्य उनकी रचनाएँ राष्ट्रीय विचारों के पोषक है। डॉ. रामसेवक पाण्डेय ने लिखा है, ''गुप्त जी राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रबुद्ध तथा जागरूक लेखक थे। उन्नीसवीं शती के अन्त तथा बीसवीं शती के प्रथम दशक में जब ब्रिटिश साम्राज्य का आतंक सर्वत्र व्याप्त था, उस समय भी गुप्तजी ने निर्भीकता पूर्वक अपनी संजीव लेखनी से तत्कालीन भारत की राजनीतिक दासता का यथार्थ की भूमिका पर बड़ी मार्मिकता से चित्रण किया।''[1]

देशप्रेम को व्यक्त करने का माध्यम केवल शासक की नीतियों और उनके कुशासन का भंडाफोड के अलावा उनका विरोध करना भी होता है। वर्तमान सामाजिक-आर्थिक दशा को चित्रित करना भी देशहित में उतना ही आवश्यक है। गुप्तजी की रचनाएँ यथा निबंध, लेख और कविताएँ वर्तमान समाज की मनोदशा कहती है। शिवशंभु के चिट्ठे हो या 'चिट्ठे और खत' धार्मिक कविता या फिर सामाजिक कविता किसान उनके केन्द्र में हमेशा रहे हैं। उस युग में किसान गरीबी का प्रतीक था।

'सर सैयद अहमद का बुढ़ापा' नामक लम्बी कविता इसलिए लोकप्रिय हुई क्योंकि इसमें किसानों की भूख-गरीबी, बेबसी का यर्थाथ चित्रण था। गुप्त जी कहते हैं

''हाय जो सब को गेहूं देते वह ज्वार बाजरा खाते हैं,
वह भी जब नहीं मिलता तब वृक्षों की छाल चबाते हैं।
उपजाते हैं अन्न सदा सहकर जाड़ा-गरमी बरसात,

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्याकंन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ..1

कठिन परिश्रम करते हैं बैलों के संग लगे दिन रात।''[1]

गुप्तजी ने कविता को केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं माना, उन्होंने कविता को सामान्य भूमि पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। उनकी कविताओं में एक संदेश होता था, चाहे वह अंग्रेजी राज की आलोचना को लेकर, चाहे देशभक्ति की भावना या फिर सामाजिक यर्थाथ का वास्तविक चित्रण हो। उनकी कविता भारत की जातीय संस्कृति से जुड़ी हुई थी।

गुप्तजी में स्वाधीन होने की चेतना कितनी प्रबलतम रूप में थी इसका उदाहरण हमें उनकी उस भावना से मिलता है, जिसमें वे राजभक्तों की चाटुकारिता प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं। बहुत सी रचनाएँ उन्होंने राजभक्तों पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखी है। पंजाब के देशद्रोहों पर कितनी मार्मिकता से प्रहार किया है :-

''पेट बन गये है इन सबके लायलटी के गुब्बारे,
चला नहीं जाता है, थककर हाँप रहे हैं बेचारे।
बहुत फूल जाने से डर है फट न पड़े यह इनके
इसी पेट के लिए लगी है लायल्टी की इन्हें चपेटा''[2]

गुप्तजी में स्वाधीन होने की चेतना इतनी प्रबल थी कि उन्होंने प्रत्येक राष्ट्रविरोधी तत्व पर प्रहार किया। गुप्तजी के गद्य और पद्य दोनों में हमें राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना सम्पूर्ण अर्थ में भारतीय थी। इसी भावना के कारण वे अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना चाहते थे। भारतीय जनता के प्रत्येक पक्ष के और अंग्रेजों के शोषण को अपनी रचनाओं में उभारा। ''बालमुकुन्द गुप्त अपने युग के पत्रकार पुड़ग्व थे। पत्रकारिता के माध्यम से उन्होंने साहित्य में राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व किया था। नवजागरण की पृष्ठभूमि में

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 192

2 (सं.) के.सी. यादव बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खण्ड-2), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर 18, गुडगाँव, 2013, पृ. - 448

जिस राष्ट्रीय भावना का विकास भारतेन्दु से आरम्भ हुआ था, उसके गायक गुप्तजी थे।”[1]

## 4.2 अंग्रेजों का विरोध/अंग्रेजी राज की आलोचना

बालमुकुंद गुप्त ने अपनी रचनाओं में मुख्यत उस पक्ष को अधिक उभारा है, जिसमें उन्होंने प्रमुख रूप से अंग्रेजों का विरोध किया है। उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज विरोध देखने को मिलता है। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के शिवशंभु ने राजनीतिक जगत में हलचल मचा दी थी। जिस समय साहित्यकार अपनी साख तथा अपना अख़बार बचाने के लिए अंग्रेजों का गुणगान कर रहे थे उस समय गुप्त जी अंग्रेजों के विरूद्ध 'शिवशंभु के चिट्ठे' लिख रहे थे। श्री मुनीश्वर झा का कथन है :- ‘‘अंग्रेजी राज्य की कठोर यातनाओं के विरूद्ध निर्भीक भाव से प्रतिवाद करना गुप्त जी जैसे देशभक्त साहित्यकार का ही काम था। इस दिशा में उनका साहस देखते बनता है। दासता और दमन की भीषण परिस्थितियों में विदेशी शासकों की कटु आलोचना करना जीवन का काम था। यह उनके नैतिक बल और आत्मतेज का निर्देशन है। शिवशम्भु शर्मा के माध्यम में उनकी आत्मा बोलती है।”[2]

गुप्त जी की रचनाएँ एक विशिष्ट उद्देश्य लिए हुए है। यह उद्देश्य ही उन्हें अपने समकालीनों से विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है। भारतेन्दु कालीन अन्य लेखक जहाँ मनोरंजन के लिए लिख रहे थे, वहीं गुप्त जी की रचनाएॅ अपने साथ गंभीर उद्देश्य लिए होती थे। जहाँ प्रतापनारायण मिश्र जैसे रचनाकार 'अंग्रेज प्रभु' की स्तुति करने के लिए 'ब्रैडलास्वागत' लिख रहे थे, वहीं गुप्त जी के ‘‘चिट्ठे और खत” दोहरी मार करते थे। एक तरफ तो भारतीय दीन-हीन प्रजा का बोध कराते हुए देश को जागृत करने का अपना दायित्व निभाते हैं, वहीं दूसरी तरफ अंग्रेज शासकों को

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 33

2 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह, 1965, पृ. - 25

यह बतलाते हैं कि भारतीय अंग्रेज शासकों की चालें समझता है। गुप्त जी ने अंग्रेजी सभ्यता और शासन के घातक परिणामों का उद्घाटन किया, उनके प्रति विरोध प्रकट किया और असंतोष का भाव जाहिर किया। अपने व्यंग्य प्रधान निबंधों के माध्यम से उन्होंने लार्ड कर्जन, लार्ड मिन्टो, भारत सचिव (लार्ड मार्ले), पूर्व बंगाल के छोटे लाट (फुलर) आदि पर निशाना साधा। ''इनके कुशासन में देश की जो दुर्गति हो रही थी, उसका जीता जागता खाका उन्होंने खींचा, इनके कुकृत्यों पर निर्मम प्रहार किया। इनकी विषमताओं का रहस्योद्घाटन कर जनता में नवजागरण लाना गुप्त जी का लक्ष्य था। सभी निबंधों में देश भक्ति की अन्तः सलिल प्रवाहित होती थी, क्योंकि अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह का स्वर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र था।''[1]

गुप्त जी ने अंग्रेजों की उस नीति का विरोध अवश्य किया जिसमें भारतीयों का अहित था, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से। 'भारतमित्र' और 'गुप्तजी' को जिस बात से सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली, वह थे 'शिवशम्भु के चिट्ठे'। इन चिट्ठों का ऐतिहासिक महत्व तो है, परन्तु उस समय में इन्होंने राजनीतिक जगत में हलचल मचा दी थी। इनकी भाषा सीधी, परन्तु चुभती हुई है। लॉर्ड कर्जन की काली करतूतों को सामने रखने के लिए गुप्तजी ने इन निबंधों और कविताओं की रचना की। विदेशी शासन की नीतियों को बेपर्दा करने के लिए व्यंग्य बाणों का सहारा लिया। ''शिवशम्भु के आठ चिट्ठों का महत्व स्वतंत्रता प्राप्ति आंदोलन में विशिष्ट है। उनमें गुप्तजी ने लॉर्ड कर्जन के भारत विरोधी कार्यों को एक-एक करके गिनाया और देशवासियों में देश भक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावना भरकर उन्हें आत्म बलिदान के लिए प्रस्तुत किया।''[2]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, 1965, पृ. - 27

2 (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त एक मूल्याकंन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 24

गुप्तजी का 'शिवशंभु' स्वयं को ही चिथड़ा पोश कंगालों का ही प्रतिनिधि बताता है। लेखक के लिए सुशासन का पर्याय रोटी, कपड़ा और मकान का बन्दोबस्त करना है। स्वदेश प्रेम और मातृभूमि का सम्मान ही उसके लिए सर्वोपरि है। इसी को गुप्तजी ने अपने निबंधों में प्रकट किया है। अंग्रेजों और अंग्रेजी राज का भंडाफोड़ करना, भारतीयों में अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति देशभक्ति पैदा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। तत्कालीन भारतीय जीवन में लॉर्ड कर्जन घृणा और आलोचना का पात्र बन गया था। राष्ट्रभक्त कवि उस पर प्रहार करने का कोई मौका चूकना नहीं चाहते थे। इसीलिए गुप्त जी ने लॉर्ड कर्जन को आड़े हाथ लिया। कर्जन का विरोध प्रकट करने के लिए गुप्त जी ने टेसू गीत और चिट्ठे लिखे और उसके बाद 'कर्जन नामा' नामक कविता लिखी। अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध कड़ा लिखने के कारण ही गुप्त जी को हिन्दोस्थान छोड़ना पड़ा था। देश के स्वतंत्र, राजनीतिक प्रश्नों पर उन्होंने बेधड़क लेखनी चलाई। जहाँ एक तरफ भारतीय जनता भूख, गरीबी और अकाल से मर रही थी, वहीं अंग्रेजी सरकार अंग्रेजों की मूर्तियां बनाकर पैसे बर्बाद कर रही थी। कर्जन ने अपने शानो-शौकत के लिए दिल्ली दरबार लगाया, जिसमें पैसा पानी की तरह बहाया। कलकत्ते में लॉर्ड लैन्सडाऊन की मूर्ति के उद्घाटन पर उन्होंने लिखा "ये मूर्तियां किस प्रकार के स्मृति चिह्न हैं? इस दरिद्र देश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखने से ही विदित होगा कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं।"[1] (बनाम लॉर्ड कर्जन) यह काल राष्ट्रीय जागृति का था। स्वदेशी के प्रति आग्रह और विदेशी वस्तुओं के प्रति विरोध बढ़ रहा था। प्रगतिशील राष्ट्रीय नेताओं ने 'स्वराज्य' का नारा दिया था। जातीय एकता को मजबूत करने के प्रयत्न आरम्भ हो रहे थे। विदेशी शासन के प्रति असंतोष बढ़ रहा था। परन्तु इस असंतोष को शब्दों में व्यक्त करना आसान कार्य नहीं था। इसके लिए निर्भीक व्यक्तित्व आवश्यक था। बालमुकुंद गुप्त ऐसे ही व्यक्तित्व

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.96

के स्वामी थे। लॉर्ड कर्जन के आने पर गुप्त जी व्यंग्य करते हुए कहते हैं, ‘‘इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियों का बस चलता तो आपको न आने देते और आपका वंश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ विराजते। पर दोनों और की बाग किसी और ही के हाथ में हैं’’[1]

कितना सीधा और सपाट व्यंग्य है जिसमे ंकोई लाग-लपेट नहीं हैं कोई चापलूसी अथवा राजभक्ति नहीं। अंग्रेजी सरकार के प्रति विद्रोह का भाव उनकी रचनाओं के साथ-साथ उनकी आत्मा में था। यह विरोध उनकी ‘टेसू’ कविताओं में भी झलकता है।

‘‘बार दूसरी कर्जन आये, सनद साल दो को फिर लाये।
आय बम्बई में यो बोले, कौन बुद्धि मेरी को तोले।
मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।’’[2]

भारत के ऐतिहासिक - सांस्कृतिक वैभव का प्रदर्शन करते हुए गुप्त जी ने कर्जन के उस वक्तव्य की ओर इशारा किया हैं, जिसमें उन्होंने भारतीयों को अज्ञानी अयोग्य, ग्वार और अशिक्षित बताया था। अंग्रेजों की इसी मंशा के भांपते हुए गुप्त जी ने अंग्रेजों के उस इरादों पर कस कर प्रहार किया, जिसमें वे भारतीयों को पीछे धकलेने की सोचते हैं। ‘पीछे मत फेंकिए’ में गुप्त जी कहते हैं, ‘‘आप जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान के जी में यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत से काम करने योग्य नहीं और उनको आपके सजातीय ही कर सकते हैं? आप परीक्षा करके देखिए कि भारतवासी सचमुच उन ऊँचे से ऊँचे कामों को कर सकते हैं या नहीं जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं।......

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त, ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.96
2 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.203

हां दो बातों में वह अंग्रेजों की नकल या बराबरी नहीं कर सकते। एक तो अपने शरीर के काले रंग को अंग्रेजों की भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्य को उनके भाग्य में रगड़ कर बराबर नहीं कर सकते।''[1]

गुप्त जी ने अंग्रेजों की प्रत्येक उस नीति का विरोध किया जो भारत विरोधी थी। कर्जन मिंटों, मार्ले, फुलर सभी की धमकियों का जवाब उन्होंने उग्रता से दिया।

आशा का अंत, एक दुराश।, आर्शीवाद जैसे निबंधों में गुप्तजी ने अंग्रेजी शासन के दुष्परिणामों के बारे में भारतीयों को चेताया हैं। भारतीय जिस शासन को सभ्यता और उन्नति का पर्याय माने बैठे हैं, वह वास्तव में दुःख और निराशा का अंधकार है। अंग्रेजी सरकार ने यदि कोई अच्छे कार्य किए है तो वह अपने स्वार्थ के लिए। लॉर्ड कर्जन को ललकारते हुए वे कहते हैं, ''माई-लॉर्ड! आपने कछाड़ के चाय वाले साहबों की दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य है और हम लोग कुछ दिन के लिए। आपके वह कुछ दिन बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ और मिलें तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये।''[2]

गुप्त जी अंग्रेजों को बार-बार यह याद दिलाना नहीं भूलते कि वे इस देश में सिर्फ कुछ दिनों के लिए हैं। यह पद और स्थान हम भारतीयों की सौगात हैं स्वयं को शिवशंभु शर्मा के माध्यम से इस भूमि का प्रतिनिधि मानते हैं। इसलिए सभी गरीब भारतीयों की तरफ से अपनी बात कहते हैं, अंग्रेजों का विरोध करते हैं और देशभक्ति के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। कर्जन ने शिक्षा को महंगी बनाकर उसे सामान्य जनों से वंचित कर दिया था। यूनिवर्सिटी एक्ट बनाकर शिक्षा पर सीधा अंग्रेजों का हस्तक्षेप कर दिया था। ऐसे साहित्य के पढ़ने पर रोक लगा दी जो स्वाधीनता की प्रेरणा देता हो। गुप्तजी ने शिक्षा की असाध्यता के बारे में व्यंग्य किया है।''

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.105

2 (सं.) नत्थन सिंह, बाल मुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा, साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.95

‘कर्जन जी जब देश पधारे, तब मिन्टो जी ने पगधारे।

लोग लगे अभिनन्दन देने, चुपके-चुपके उत्तर लेने।

मारवाड़ियों से खुश होकर, कहा बनो तुम रायबहादुर

पढ़ो लिखो मत मौज उड़ाओं, आये साल उपाधी पाओ।”[1]

शिक्षा पद्धति पर चोट करके भी कर्जन को शांति नहीं मिली तो उन्होंने जाते-जाते बंग-भंग कर दिया। बंगाल के विभाजन से भारत का हृदय कराह उठा। गुप्त जी ने बंग विच्छेद पर बहुत ही मार्मिक लेख लिखे। गुप्त जी कहते हैं - “अब कुछ करना रह भी गया हो तो उसके पूरा करने की शक्ति माई लॉर्ड में नहीं है। आपके हाथों से इस देश को जो बुरा भला होना था, वह हो चुका, एक ही तीर आपके तर्कश में और बाकी था, उससे आप बंग भूमि का वक्षस्थल छेद चले। बस यहाँ आकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई। इस देश की भलाई की और तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करने की शक्ति भी आपमें थी।”[2]

बंग-भंग के विरोध में चारों तरफ आन्दोलन हो रहे थे। लोगों ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना आरंभ कर दिया। जगह-जगह स्वदेशी आंदोलन होने लगे। गुप्त जी का सम्पूर्ण समर्थन इन आन्दोलनों के साथ था। स्वदेशी आन्दोलन को समर्थन देने के लिए गुप्त जी ने कई लेख और कविताएँ लिखी। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने बालमुकुदं के बारें में कहा है, “राष्ट्र की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए बालमुकुन्द गुप्त स्वदेशी आंदोलन का समर्थन करते हैं। संभवत कुछ लोग विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार एवं स्वदेशी आंदोलन के प्रवर्तन का श्रेय केवल महात्मा गांधी को देना चाहे, किन्तु वास्तविकता यह है कि उनसे बहुत पूर्व हिन्दी के राष्ट्रीय कवि इस क्षेत्र में आगे बढ़ गये थे।”[3] बंगाल में जगह-जगह आंदोलन हो रहे थे।

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.209

2 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.188

3 डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, खण्ड-द्वितीय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.36

अंग्रेजी सरकार इन आंदोलनों को दबाने के लिए दमन पर उतारू हो गई। गवर्नर फुलर ने धमकी दी थी कि अगर आंदोलन बंद नहीं किया गया तो 'शाइस्ता खाँ' का जमाना वापिस ला दिया जाऐगा। गुप्त जी ने विरोध स्वरूप दो पत्र तो 'शाइस्ता खाँ का खत फुलर साहब के नाम' शीर्षक से लिखे। इस क्रम में 'छोड़ चले शाइस्ताखानी' नामक कविता भी लिखी। इन निबंधों में शाइस्ताखाँ के मुंह से अंग्रेजों को चोर, डाकू और दूसरों के देश को हड़पने वाला कहलवाकर अपने अंग्रेज विरोध को प्रकट किया है। 'शाइस्ता खाँ' चाहे जितना ही क्रूर और अत्याचारी था, परन्तु उसका शासन अंग्रेजी राज से अच्छा था। शाइस्ता खाँ के माध्यम से गुप्त जी कहते हैं :-

''तुम लोगों को मैं सदा कमीने, झगड़ालू लोग और बेईमान वक्काल कहा करता। मेरे बाद भी तुम्हारे कामों से इस मुल्क के लोगों को कभी मुहब्बत नहीं हुई।''[1]

अंग्रेजों को सीधे-सीधे ललकारने का साहस गुप्तजी जैसे निर्भीक पत्रकार के ही बस का था। ये उनकी निडरता का प्रमाण है। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने पत्रकारिता के क्षेत्र में इतना नाम कमाया था कि अंग्रेजों ने भारतीय साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता में स्थित हाईकोर्ट में स्पेशल ज्यूरी मनोनीत किया। लॉर्ड कर्जन के दिल्ली दरबार (1903) में उन्हें इस तरह निमंत्रित किया गया जैसे अंग्रेजी समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को। परन्तु उन्होंने इस सम्मान को ग्रहण करते हुए भी कभी राजभक्ति नहीं दिखाई। अंग्रेजों के प्रति उनके मन में कभी आदर, सम्मान अथवा सहानुभूति नहीं जागी। उन्होंने अंग्रेजों का सदा विरोध ही किया।

इंग्लैंड में उदार दल की सरकार बनने से लोगों को विश्वास था कि भारत में अब शासन सुधरेगा, परन्तु गुप्त जी इस भ्रम से दूर थे उन्होंने लोगों को भी चेताया कि उदार और अनुदार दोनों एक से ही है। गुप्त जी ने कहा है-

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005 पृ.203

"नहिं कोई लिबरल नहीं कोई टोरी, जो परनाला सोई मोरी।

दोनों का है पंथ अधोरी, होली है, भई होली है।"[1]

"निष्कर्ष यह है कि गुप्त जी उत्कृष्ट कोटि के देशभक्त लेखक थे। वह निर्भीकता पूर्वक अंग्रेज गवर्नर, वायसराय तथा भारत सचिव आदि के भारत विरोधी कार्यों की आलोचना करते हैं। उदार तथा अनुदार दलों को भारत का शोषक बताते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करते हैं।"[2] गुप्त जी ने सदैव ऐसी समस्याओं की तरफ भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट करना चाहा जोकि अग्रेंजी साम्राज्य की देन थी। स्वाधीनता की चेतना की रोशनी उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से जताई। अग्रेंजी राज्य की कृटनीतियों को गुप्तजी बारीकी से समझते थे। अग्रेंजो का विरोध करने के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया। अग्रेंजो का प्रत्यक्ष विरोध वही कर सकता है जिसमें स्वाधीनता की चेतना विद्यमान हो। यह गुप्त जी के चरित्र का विशिष्ट पहलू है।

## 4.3 हिन्दी की जातीय चेतना के निर्माण में योगदान

भारतेन्दु और उसके साथियों ने जिस जातीय गद्य की शुरूआत की उसका स्वरूप सामंत विरोधी रहा है। अंग्रेजों को इसी प्रदेश को विजित करने में सबसे अधिक कठिनाई हुई थी। 1857 का स्वाधीनता संग्राम हिन्दी क्षेत्र का मुख्य संग्राम था। 1873 में भारतेंदु हिन्दी को नई चाल में ढलने की बात मानते हैं, परन्तु साथ-साथ विचारों की नई करवट को भी मानते हैं। भारतेन्दु और उनके साथियों ने जिस जातीय गद्य की शुरूआत की, वह हिन्दी के माध्यम से ही की थी। वह युग राजनीतिक, सामाजिक तभा भाषा संबंधी आंदोलनों का था। हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत करने के लिए जो साधन मिलता, उसी को लेकर साहित्यकार सक्रिय हो जाता। नाटक, सभा, व्याख्यान जो भी साधन मिलता उसे काम में लाने में हिचकिचाते नहीं थे।

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 200

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 259

मेले–ढ़ेले, जनता का जमाव, सभा – समिति जहाँ होती, वहीं हिन्दी का प्रचार आरंभ कर देते। हिन्दी हस्ताक्षर अभियान के लिए कुछ सभाएँ स्थानीय थी, कुछ नागरी प्रचारिणी सभा के संगठन की थी। इन सभाओं ने हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देश के बिखरे नगरों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उस युग के हिन्दी लेखकों ने अनेक सभाओं – संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी प्रचार प्रसार को बढ़ावा दिया। इन सभाओं ने देश के बिखरे नगरों में लोकप्रिय बनाने में योगदान दिया।

राधाचरण गोस्वामी ने कवि कुल कौमुदी सभा के माध्यम से, आर्य समाज ने अपने प्रचार के द्वारा, भारतेन्दु की कविता वृद्धिनी सभा, पेनी रीड़िग क्लब, तटीय समाज आदि संस्थाओं के माध्यम से, सुधाकर द्विवेदी जी ने विज्ञान प्रचारिणी सभा के माध्यम से, तोताराम ने भाषा ( अलीगढ़) संवृद्धिनी सभा के माध्यम से, पटना में कवि समाज, रांची में मातृभाषा परिषद्, कार्तिक प्रसाद खत्री ने पूर्वोत्तर राज्य शिलांग में मित्र समाज के माध्यम से हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत किया।

उस युग में हिन्दी आंदोलनों की धूम मची हुई थी। उस समय के लेखकों ने हिन्दी सेवा का अखण्ड व्रत लिया हुआ था। बालमुकुंद गुप्त भी इन्हीं हिन्दी लेखकों में से एक थे। गुप्त जी भी हिन्दी की सेवा के लिए उर्दू का त्याग कर हिन्दी पत्रकारिता में कूदे थे। कलकत्ता उस समय हिन्दी पत्रकारिता का केन्द्र बना हुआ था। गुप्त जी ने अपने समय में उठाए गए हिन्दी संबंधी आंदोलनों और चर्चा–परिचर्चा में भाग लिया। हिन्दी–उर्दू के मध्य उठाई गई प्रतिद्वन्द्विता के पीछे धार्मिक तथा राजनैतिक अनुप्रेरणाएँ प्रतिक्रियावादी शक्तियों के रूप में कार्य कर रही थी। गुप्त जी ने सम्पूर्ण आस्था के साथ इस संघर्ष में भाग लिया। इनके भाषा संबंधी निबंधों में इसी भावना के दर्शन होते हैं। भाषा समस्या पर गुप्त जी ने गंभीरता पूर्वक विचार किया था। गुप्त जी भाषा की शक्ति से पूर्णतः परिचित थे, इसलिए उन्होंने पूरी आस्था के साथ हिन्दी भाषा की जातीय एकता को मजबूत करने के लिए कार्य किया।

भारतेन्दु को अपना आदर्श मानते हुए गुप्त जी ने अपना जीवन हिन्दी को समर्पित कर दिया। उनके सामने प्रश्न हिन्दी भाषा के साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी था। अंग्रेजी के वर्चस्व को तोड़कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा, जनता की एकता की भाषा बनाने का था। यह उनका विश्वास ही था कि हिन्दी समस्त राष्ट्र की भाषा बन सकती हैं। हिन्दी भाषा और लिपि से संबंधित उन्होंने बहुत से निबंध लिखे जिनमें से हिन्दी भाषा की भूमिका, हिन्दी भाषा, हिन्दी की उन्नति, भारत की भाषा, एक लिपि की जरूरत, देवनागरी अक्षर और हिन्दुस्तान में एक रस्मुलखत आदि प्रमुख है। इन निबंधों में भाषा की जातीय चेतना के दर्शन होते हैं।

‘‘बालमुकुंद गुप्त ने अपने भाषा संबंधी निबंधों में जिन तथ्यों और विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख किया है, उनसे हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी भाषा आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना के साथ सम्बद्ध हैं। ये निबन्ध हमारे सम्मुख एक युग विशेष को मुखरित कर देते हैं। उस युग को जिसमें देश अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होने की बलवती प्रेरणा से शक्ति संचय कर रहा था। उस युग का जिसमें एक वर्ग विशेष हिन्दी भाषा के माध्यम से ही राष्ट्र संगठन की परिकल्पना कर हिन्दी के विकास और प्रसार की चेष्टा में विविध दिशाओं से शक्ति संचय कर रहा था।’’[1]

सिर्फ हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है, इस मत को व्यक्त करने के लिए गुप्त जी ने ‘भारत की भाषा’ नाम से निबंध लिखा। गुप्त जी ने इस निबंध में हिन्दी भाषा और उसके स्वरूप का मूल्यांकन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में किया हैं। राष्ट्रीय एकता के निर्माण में अन्य प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को भी स्वीकारा। प्रवासी (प्रयाग से निकलने वाला बंगला भाषा का पत्र) ने चारों भाषाओं को एक ही लिपि में लिखने का सुझाव दिया इसी का अनुमोदन करते हुए गुप्त जी ने कहा है - ‘‘विचार उत्तम है। हम इसका अनुमोदन करते हैं। निश्चय चार भाषाएं जब एक ही अक्षरों में एक

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.149

पत्र में छपेंगी तो धीरे-धीरे वह बहुत मिल-जुल जाएँगीं। उक्त पत्र के पाठक भी चारों भाषाओं के जानने-सीखने की चेष्टा करेंगे। देवनागरी अक्षरों का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही भारतव्यापी होने के योग्य भाषा हिन्दी का अधिक प्रचार होगा। हिन्दी अब भी भारतव्यापी है।''[1]

गुप्त जी की चेतना दूर-दर्शिनी थी। देश के जन-जन की मानसिकता का अंदाजा उन्हें था। राष्ट्रीय चेतना का अभिर्भाव उनमें व्याप्त मानसिक एकता के माध्यम से हो सकता है और यह एकता भाषा के माध्यम से ही संभव हैं। गुप्त जी की धारणा थी कि देश की राष्ट्रीय भाषा एक हो और भिन्न-भिन्न भाषाएं एक ही लिपि 'देवनागरी' में लिखी जाएँ जिससे विभिन्नता में एकता बनी रहे।

बीसवीं सदी की पत्रकारिता में विविधता और एक रूपता तो मिलती है परन्तु अभी हिन्दी में रूचि रखने वाली जनता बहुत छोटी थी। परन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदली और हिन्दी पत्रों ने साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व करना आरंभ कर दिया। इसके लिए हिन्दी पत्रकारों, साहित्यकारों और लेखकों ने जी-तोड़ मेहनत की। अपना सर्वस्व हिन्दी को अर्पित कर दिया। उत्तर भारत के प्रत्येक नगर में हिन्दी और नागरी प्रचार की असंख्य सभाएं और संस्थाएँ बनाई गईं। कलकत्ते के पत्र और पत्रकार भी हिन्दी और नागरी के विराट और व्यापक आंदोलन के अंग बन गए। कलकत्ता हिन्दी प्रचार का प्रमुख केन्द्र बना। मेरठ के पं. गौरीदत्त शर्मा नागरी का झंडा उठाए जगह-जगह घूमते थे। उनके उदम्य साहस से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति हिन्दी आंदोलन से जुड़े। बालमुकुंद गुप्त उन सभी आंदोलन से जुड़े। बालमुकुंद गुप्त उन सभी आंदोलनों का हिस्सा बना। हिन्दी के संबंध में दर्जनों लेख लिखे। हिन्दी की उन्नति में वे कहते हैं - ''केवल गाल बजाने से हिन्दी की उन्नति नहीं होती है। भाषा की उन्नति के लिए लेखक चाहिए। लेखक बनने के लिए पाठक चाहिए और

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्तः संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 208

पाठक होने के लिए मातृभाषा पर अनन्त अनुराग, अनन्त प्रेम, अनन्त भक्ति चाहिए।''[1]

हिंदी की भाषायी चेतना ने राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर लिया था। हिन्दी पत्रकारिता ने इसी जातीय चेतना को दृढ़ करने के लिए कार्य किया। हिन्दी भाषा और उसकी जातीय एकता को मजबूत करने के लिए गुप्त जी ने 'हिन्दोस्थान' और 'भारतमित्र' जैसे पत्रों के माध्यम से कार्य किया। हिन्दी से संबंधित जितने भी आंदोलन हुए वे सभी राष्ट्रीय आंदोलन की एक धारा की तरह हैं। सारसुधानिधि, उचित वक्ता और भारतमित्र आदि पत्र बीसवीं सदी के राष्ट्रीय चेतना के पत्र थे, जिन्होंने सामाजिक आर्थिक मुद्‌दों पर जमकर लेखनी चलाई। गुप्त जी ने भारतमित्र के माध्यम से हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत करने में योगदान दिया। भाषा, लिपि, व्याकरण, स्वरूप, जातीय एकता, हिन्दी-उर्दू का मेल, हिन्दी-उर्दू में भिन्नता आदि प्रश्नों पर उन्होंने शालीनता से विचार किया। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र का कहना है, ''भाषा संबंधी ऐसे अनेक ऐतिहासिक महत्व के कार्यो को भारतमित्र ने सम्पन्न किया। देवनागरी लिपि में कई लेख बाबू बालमुकुंद गुप्त ने लिखे थे। देवनागरी लिपि की उन्नायिका संस्था 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के आन्दोलन को भारतमित्र ने शीर्ष महत्व दिया। भाषा निर्माण और उन्नयन की ही यह एक स्वस्थ चेष्टा थी।''[2]

भारतेन्दु युग की जिन्दादिली उनकी विरासत है। उस युग के रचनाकारों में विविधता देखने को मिलती है। जिस रचनाकार ने जो बात कहनी चाही वह स्पष्टता से कही। कहीं भी छुपाव नहीं दिखाई देता। भारतेंदु का साहित्य जिंदादिली की मिसाल है, तो प्रतापनारायण मिश्र का साहित्य मस्ती और फक्कड़पन लिए है, राधाचरण गोस्वामी की रचनाओं में सामाजिक प्रगतिशीलता दिखाई पड़ती हैं, वहीं गुप्तजी के

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्तः (संकलित निबंध), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 206

2 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, भारतीय, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ. 462

साहित्य में राजनीतिक प्रखरता के दर्शन होते हैं। यद्यपि अन्य पहलुओं पर भी इन्होंने लिखा है। परन्तु एक विशेष क्षेत्र में लिखने पर इन्हें प्रसिद्धि मिली। विविधताओं के होते हुए भी इनमें एक समानता मिलती है, वह है हिन्दी के जातीय उन्नयन के लिए साझा प्रयास। गुप्त जी की महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इन्होंने उर्दू और मुसलमानों का विरोध नहीं करते हुए भी हिन्दी का समर्थन किया। अपनी संस्कृति से हिन्दी का संबंध जोड़ा। कर्मेन्दु शिशिर का कहना है। ''भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के संधिकाल में बालमुकुंद गुप्त जातीय गद्य परम्परा के अत्यंत प्रखर और शीर्ष गद्यकार है। उन्हें जिंदादिली भारतेन्दु से विरासत में मिली थी और उनके व्यंग्य में इतना पैनापन भरा था, जिसकी मार तिलमिला देने वाली थी। उनके गद्य में जनभाषा का परिष्कृत साहित्यिक रूप था। वाक्य असाधरण रूप से गठित ठोस और सघन तो थे ही उनमें मारकशक्ति बड़ी गजब की थी।''[1]

हिन्दी के जातीय उन्नयन के लिए बालमुकुंद गुप्त कितने चिंतित थे इसका उल्लेख वे हिन्दी की उन्नति लेख में करते हैं, ''यदि हिन्दी पर सचमुच अनुराग हुआ तो हिन्दी की उन्नति के धन संग्रह कीजिए, सुयोग्य सुपंडितों से हिन्दी की प्रयोजनीय पुस्तकें लिखवाकर संगृहीत धन से खरीद लीजिए। वह पुस्तकें देश में बांट कर देशवासियों में हिन्दी पढ़ने का शौक फैलाइए। तभी मातृभाषा की उन्नति होगी तभी हिन्दी अपने उचित स्थान को प्राप्त कर देशवासियों को अपने फल-फूल-पत्र-पल्लवों से सुशोभित होकर बहार दिखा सकेगी।''[2] गुप्त जी का मानना था कि नागरी अक्षरों को छोड़कर अन्य किसी भी लिपि में वह विशेषता नहीं है जिससे कि वह अन्य बोलियों को सही-सही लिख सके। देवनागरी अक्षर निबंध में गुप्त जी कहते हैं ''देवनागरी अक्षर भारतवर्ष में सबसे उत्तम अक्षर है। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत इन्हीं अक्षरों

1 कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2008, पृ. 28-29

2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त (संकलित निबंध), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 206

में लिखी जाती है। सीखने में भी यही सबसे जल्द आते हैं। जिस पर भी लोगों का इन पर वैसा प्रेम नहीं, जैसा होना चाहिए।"[1] गुप्त जी ने सिर्फ इसलिए हिन्दी भाषा का पक्ष नहीं लिया कि वह उनके क्षेत्र की भाषा थी। उन्होंने इस भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से समर्थन किया। हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि की हिमायत करने के लिए उन्होंने उर्दू के निराधार आरोपों का उत्तर दिया। हिन्दी उर्दू विवाद को शांत करने के लिए गुप्तजी ने नागरी अक्षर, मुसलमानी नाराजी, उलटे अक्षर, गरारेदार पंडित, नागरी की अर्जी आदि लेख लिखे। हिन्दी-उर्दू के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, "आज के हिन्दी लेखक भारतेन्दु, बालमुकुदं गुप्त और प्रेमचन्द से कुछ बढ़िया हिन्दी नहीं लिखते। अगर उन जैसे महान् लेखक भी उर्दू से कुछ सीख सकते थे तो हम क्यों नहीं सीख सकते?"[2] गुप्तजी का मानना था कि भाषा का संबंध धर्म या जाति के साथ नहीं बल्कि मानव समुदाय से होता है। भाषा का वही रूप उपयोगी है, जो बहुसंख्यक जनसमुदाय के साथ होता है। विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों की समीपता लाने के लिए वे देश की सभी भाषाओं को एक ही लिपि में लिखने का सुझाव देते हैं। हिन्दी भाषा का इतिहास लिखने की चेष्टा गुप्तजी ने की थी परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु के कारण वह पुस्तक पूरी न हो सकी। परन्तु जितना उन्होंने लिखा उसमें मुगलों के समय से लेकर अपने समय तक के हिन्दी के बदलते स्वरूप की चर्चा की है। डॉ. के.सी. यादव ने गुप्त जी की इस पुस्तक के बारे में कहा है, "वास्तव में हिन्दी भाषा के द्वारा हमें राष्ट्र निर्माण का नीला नक्शा देना चाहते थे। इस अपूर्ण कृति में भी उसकी झलक साफ दिखती हैं यहां हिन्दी और उर्दू माँ-बेटी है, उत्तर की क्षेत्रीय भाषाएं हिन्दी के अंतर्गत खड़ी हैं अन्य स्थानों की अन्य भाषाओं में भी कहीं न कहीं

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त (संकलित निबंध), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 215

2 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 142

अपनेपन का रिश्ता है और हिन्दी के निर्माण में हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई सब का योग है।"[1]

## 4.4 हिन्दी गद्य का विकास

भारतेन्दु युग से पूर्व ही गद्य के विकास का प्रयास आरम्भ हो गया, परन्तु अभी उसका प्रचार-प्रसार होना बाकी था। इसी संदर्भ में डॉ. शभुंनाथ का कहना है, "हिन्दी में आधुनिक काल का आरंभ नवजागरण के साहित्य से होता है, जिसमें भारतेन्दु-पूर्व आधुनिक साहित्य, भारतेन्दु युगीन साहित्य तथा द्विवेदी युगीन सहित्य आयेगा। इसी साहित्य से आधुनिकता, प्रगतिशीलता और जनवाद की परंपरा आरंभ हो जाती है।"[2] भारतेन्दु ने नाटक विद्या का प्रसार-प्रचार किया था, परन्तु अन्य विद्याएं अभी उपेक्षा की ही पात्र थी। उपन्यास की तरफ लोगों की रूचि जागृत हो रही थी। बंगला से अनूदित उपन्यास लोगों में हिन्दी प्रेम का एक कारण बने। भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने अनुवाद का कार्य बहुत बड़े स्तर पर किया। लगभग इस काल के सभी लेखक एक से अधिक भाषाएं जानते थे। हिन्दी सेवा की आकांक्षा इनमें थी ही, इसलिए अन्य भाषाओं की प्रसिद्ध कृतियों जैसे- उपन्यास, नाटक, कहानी का अनुवाद होने लगा। हिन्दी रचनाकारों ने लोगों को आकर्षित करने के लिए हिन्दी में अनुवाद कार्य आरंभ किया। हिन्दी रचनाकारों ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय प्रान्तीय भाषाओं को छोड़कर हिन्दी को अपनाया। बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी और अम्बिका दत्त व्यास जैसे लेखक संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। परन्तु फिर भी मातृभाषा के प्रति दायित्व की खातिर हिन्दी में रचनाकार्य आरम्भ किया। सुधाकर द्विवेदी जैसे संस्कृत के प्रखण्ड पंडित ने नागरी भाषा का उपकार करते हुए विज्ञान प्रचारिणी सभा की स्थापना की। विज्ञान और गणित की पुस्तकों का अनुवाद उन्होंने हिन्दी में किया। बालमुकुंद

1 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुड़गांव, 2013, पृ. 18

2 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञान भारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.9 (भूमिका से)

गुप्त भी उर्दू के अच्छे लेखक और पत्रकार रहे। परन्तु देश सेवा करने का माध्यम उन्होंने हिन्दी को ही चुना।

हिन्दी गद्य के विकास में गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि उन्होंने ऐसी भाषा का आविष्कार किया जो उर्दू की ख्याति लिए हो, अन्य भाषाओं के शब्द भी अपनाएं हो, सरलता और सरसता से परिपूर्ण हो और कृत्रिमता से मुक्त हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है, ''गुप्त जी की भाषा बहुत चलती, सजीव और विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकार का विषय हो, गुप्त जी की लेखनी उस पर विनोद का रंग चढा देती थी। वे पहले उर्दू के अच्छे लेखक थे, इससे उनकी भाषा बहुत चलती और फड़कती हुई होती थी। वे अपने विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेटकर रखते थे कि उनका आभास बीच-बीच में ही मिलता था।''[1]

गुप्त जी उर्दू के लेखक-पत्रकार थे उनकी भाषा पर उर्दू का प्रभाव होना स्वाभाविक था। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है प्रसंगानुसार वे अपनी भाषा का रूप बदलते थे।

बालमुकुंद गुप्त भिन्न-भिन्न शैलियों में लिख सकते थे। हिन्दी भाषा में ये लिखते हैं, ''जान पड़ता है कि मुसलमानों के इस देश में पांव रखने के समय यहाँ चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। विद्या का सूर्य अस्त हो चुका था।''[2] वहीं अन्य उदाहरण में वह कहते हैं, ''मैं वहीं हूँ जिसने असबाबे बगावत लिखकर विलायत तक में खलबली डाल दी थी। इन सूबों में मैं ही पहला शख्स हूँ, जिसने अंग्रेजों को आम रियाया की राय का खयाल दिलाया।''[3] गुप्त जी ने भारतेन्दु युग में भाषागत प्रयोगों को आगे बढ़ाने का कार्य किया। भारतेंदु युगीन प्रत्येक रचनाकार की भाषा में उनका क्षेत्रीय प्रभाव झलकता था। गुप्तजी ने अपनी भाषा को पूर्णयता नहीं तो, बहुत हद

---

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. 415

2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलितः निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 176

3 वहीं पृ. 57

तक क्षेत्रीयता के प्रभाव से मुक्त रखा था। आगे चलकर इस भाषा का स्वरूप हम प्रेमचन्द की शैली में पाते हैं।

हिन्दी में आने से पूर्व वह उर्दू के श्रेष्ठ लेखकों में स्थान पा चुके थे। वह भाषा के सहज, स्वाभाविक तथा बोलचाल वाले रूप के पक्षधर थे। उर्दू भाषा में भी उन्होंने यही स्वरूप अपनाया था। हिन्दी भाषा में उर्दू-फारसी के तत्सम रूपों की अपेक्षा बोलचाल के शब्दरूपों को ग्रहण करने के पक्ष में थे। हिन्दी गद्यलेखन में भी उन्होंने यहीं नीति उन्होंने अपनाई।

डॉ. नत्थन सिंह का कहना है, ‘‘हिन्दी गद्य लेखन में भी उनकी नीति रही, उनकी सहज एवं सरल शैली की विशेषता है - छोटे-छोटे भावपूर्ण वाक्य, जिनकी रचना हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के व्यवहार प्राप्त शब्दों से होती है। प्रचलित और सहज मुहावरों का प्रयोग इस शैली का दूसरा गुण है ये ही दोनों तत्व उनकी शैली को स्पष्ट स्वच्छ तथा प्रभावपूर्ण बनाते हैं।’’[1]

गुप्त जी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के प्रचलित शब्द सहज भाव से प्रयुक्त करके गद्य की भाषा को ऐसा प्रभावशाली स्वरूप प्रदान किया है कि एक-एक शब्द में जान आ गई है। चलते शब्दों, चुटीली भाषा, मुहावरों का प्रयोग करके भाषा को प्रभावशाली एवं जिन्दादिली से युक्त बनाया। यही जिन्दादिली भारतेन्दु युग की विशेषता रही हैं। भारतेदु कालीन लेखकों के गद्य में जीवंतता पाई जाती है परन्तु कुछ कमियां भी रही है। उन्हीं की तरफ इशारा करते हुए वीरभारत तलवार ने लिखा है, ‘‘भारतेदु युग के लेखकों के हसॅमुख गद्य की तारीफ की जाती है जो वाजिब है। उस गद्य की जिदांदिली, उमंग और स्वच्छंदता को उचित ही सराहा जाता है। लेकिन यह उस गद्य का सिर्फ एक पक्ष था। उसके दूसरे पक्ष की हमेशा अनदेखी की गई। उन लेखकों ने न सिर्फ कई प्रचलित अरबी-फॉरसी शब्दों को हटाकर उनकी जगह संस्कृत शब्दावली का इस्तेमाल किया, बल्कि कई आसान हिंदी शब्दों को भी हटाकर, कठिन और अप्रचलित

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली हरियाणा, साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 285

संस्कृत के शब्द ठूंसे।"[1] उस युग के साहित्य पर जन-जीवन का रंग है। व्याकरण की दृष्टि से उनके गद्य में खामियां मिल सकती हैं। परन्तु यह सत्य है कि उन्होंने साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया है। गुप्त जी जैसे बहुत से लेखकों ने व्याकरिणक अशुद्धियां दूर करने का प्रयास किया है। गुप्त जी करी भाषा इसका अपवाद रही है।

उनके गद्य की ताजगी, उसका जन-जीवन से जुड़ाव, मुहावरेदार भाषा, चुटीला व्यंग्य कुछ ऐसी विशेषता है जो भाषा को आज भी प्रभावशाली बनाती है। इनकी भाषा में फारसी के प्रचलित शब्दों का बहिष्कार नहीं है, न ही संस्कृत के शब्दों की भरमार हैं और न अंग्रेजी शब्दों का विरोध है। यद्यपि इन्होंने हिन्दी भाषा के संस्कृत निष्ठ होने अथवा उर्दू के अरबी-फारसी स्वरूप का विरोध किया है परन्तु भारतेन्दु, बालमुकुंद गुप्त तथा प्रेमचन्द जैसे लेखकों ने उर्दू से बहुत कुछ सीखा है। डॉ. राम विलास शर्मा का कहना है "भारतेंदु युग आधुनिक हिन्दी गद्य के निर्माण युग था। उसका महत्त्व भाषा को व्यवस्थित करने में उतना नहीं है जितना उसे बोलचाल के नजदीक रखते हुए साहित्यिक रूप देने में। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के पूरबीपन पर हजारों शुद्ध हिन्दी लिखने वालों का टकसालीपन निछावर है। भारतेन्दु युग के महान् लेखकों का गद्य अवध और ब्रज की धरती के बहुत ही नजदीक है। धूल भरे हीरे की तरह वह गद्य स्थानीयता के भीतर दमकता है।"[2]

इस युग में जो भी साहित्य लिखा गया उसकी मुख्य विशेषता यह थी कि हिन्दी साहित्य को सामन्ती प्रथा से मुक्त करके राष्ट्रीय स्वाधीनता, जातीय एकता और जनता की सेवा के रास्ते पर ले जाने की कोशिश की गई। गुप्तजी के शिवशंभु के चिट्ठे इस दिशा में किया गया एक प्रयास है। इनके द्वारा लिखे गए हिन्दी भाषा और लिपि के संबंध में लिखे गए निबंध, हिन्दी-उर्दू का झगड़ा मिटाने के लेकर लिखे गए लेख भारत

---

1 वीरभारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.109

2 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.146

सचिव, वायसराय, अंग्रेज अधिकारियों पर किए गए व्यंग्य इसी दिशा में जाने का रास्ता है। दूसरी तरफ उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नई दिशा दी। एक नई भाषा शैली को अपनाया जो क्षेत्रीय और संस्कृत निष्ठ हिन्दी दोनों के प्रभाव से मुक्त थी। भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें चुटीली कहावतों, मुहावरों, छोटे-छोटे वाक्यों का गठन किया। भाषा को व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध करने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी से विवाद किया। 'शेष' शब्द पर गंभीर बहस चली। हिन्दी समाचार पत्रों की भाषा पर भी वह टोका-टोकी करते रहते थे, ताकि हिन्दी को शुद्ध रूप में लिखा जा सके। जहाँ गलत लगा वहां तुरन्त इशारा किया चाहे सामने वाला कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो। हिन्दी भाषा को व्यवस्थित सरल और लोकप्रिय रूप देना ही उनके उद्देश्यों में से एक था। व्यंग्य विद्या उस युग की प्रमुख विद्याओं में से एक थी। व्यंग्य के साथ हास्य का मिश्रण उस युग के रचनाकारों की रचनाओं में पाया जाता है।

तत्कालीन निबंधकारों ने उस समय के कटु सत्य को कहने के लिए हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लिया। सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को देखकर ही व्यंग्य का सहारा लिया गया। हास-परिहास शैली में व्यंग्य कहने का प्रवर्तन भारतेन्दु ने किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, ''बालमुकुन्द गुप्त ने भारतेन्दु के लिए लिखा था कि वे तेज, तीखे और बेधड़क लिखते थे। ये गुण गुप्तजी के हिस्से में खास तौर से थे, इसलिए भारतेन्दु का तेज और तीखा गद्य उनको विशेष प्रिय था।''[1] आगे चलकर इन निबंधकारों ने इसी शैली को अपनाया। पं. बालकृष्ण भट्ट का व्यंग्य अत्यंत शिष्ट एवं संयत था। पं. बालकृष्ण भट्ट की रचनाओं में चुलबुला पन पाया जाता है। गुप्त जी का व्यंग्य एक विशिष्ट शैली लिए होता था। इनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रधानता है। हास्य एवं व्यंग्य का मिश्रण उनके निबंधों के अतिरिक्त उनकी कविताओं, आलोचनाओं में भी पाया जाता हैं। डॉ. राजेन्द्र सिंह का कहना है, व्यंग्य के क्षेत्र में बालमुकुंद गुप्त

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्द्र हरिशचन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.161

अपना सानी नहीं रखते। उनके व्यंग्य अत्यंत सशक्त और बेधने वाले हैं। उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों द्वारा सम्पादित भारत विरोधीकार्यों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण और उन पर करारे व्यंग्य किये।... किसी भी विषय पर उन्होंने लिखा उनका ध्यान सदैव समाज और राष्ट्र की समस्याओं की ओर रहा।"[1]

गुप्त जी के समय में साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया था। गुप्त जी के निबंधों में ये समस्त स्थितियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। भारतेन्दु युग के निबंधों में भाषा के स्वरूप निर्माण के प्रति आग्रह नहीं मिलता। यह चेष्टा, द्विवेदी युग में दृष्टिगोचर होती है। गुप्त जी का समय दोनों का संधिकाल माना जाता है, इसीलिए उनके साहित्य में दोनों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, "बालमुकुन्द गुप्त का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह हास्य रस से क्षण में ही दूर हटकर शैली को गम्भीर बना सकते है। उनकी गम्भीर शैली में एक प्रकार की कविता है, जिससे गद्य भी कविता की भांति सरस हो उठता हैः विचार आया कि काल अनन्त है, जो बात इस समय है वह सदा न रहेगी।.........

यमुना उत्ताल तंरगों में बह रही थी। ऐसे समय में एक दृढ़ पुरुष एक सद्यजात शिशु को गोद, में लिए मथुरा के कारागार से बाहर निकल रहा था। यह बिलकुल आधुनिक गद्य है। बालमुकुन्द गुप्त स्वर्गीय महावीर प्रसाद द्विवेदी के समसामयिक तो थे ही परन्तु उनकी निबन्ध रचना की शैली भारतेन्दु-युग की है। भाषा में परिष्कार हो चुका है। वाक्य विन्यास एकदम सधा हुआ है, गति और यति का वैसे ही ध्यान रखा गया है जैसे मुक्त छन्द में। सन् 1920 के आन्दोलन से कारागार कृष्ण मन्दिर अवश्य बन गया, परन्तु बालमुकुंद गुप्त ने बहुत पहले लिखा था, वह कारागार भारत सन्तान

1 डॉ. राजेन्द्र सिंह बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का निबंध साहित्य, कवि सभा दिल्ली, शाहदरा, दिल्ली, 1996, पृ. 222

के लिए तीर्थ हुआ। वहाॅ की धूल मस्तक पर चढ़ाने योग्य हुई।''[1] भारतेन्दु युग के लेखकों में भाषा की सजीवता और प्रवाहता को लेकर ध्यान दिया जाता रहा परन्तु भाषा शुद्वता के प्रति आग्रहशील द्विवेदी युग के रचनाकार हुए। परतु गुप्तजी की भाषा में दोनों युग की प्रवृतियां पाई जाती है।

''द्विवेदी युग में भाषा के स्वरूप विन्यास हेतु किये गये प्रयत्नों में बालमुकुंद गुप्त का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है।...लेखन में व्याकरण के सिद्वान्तों की अवहेलना इस युग के निबंधकार कर जाते थे, परन्तु बालमुकुंद गुप्त भाषा के शुद्ध और परिमार्जित स्वरूप के प्रति सदैव आग्रहशील रहे। खड़ी बोली के स्वरूप निर्माण का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही दिया जाता है, परन्तु इस संदर्भ में बालमुकुंद गुप्त के योगदान को हम नगण्य नहीं कह सकते। बालमुकुंद गुप्त ने भाषा में शब्द चयन के प्रति विशेषरूप से आग्रह व्यक्त किया।''[2]

हिन्दी बंगवासी का कार्यभार संभालते ही उन्होंने हिन्दी गद्य शैली के स्वरूप की तरफ ध्यान देना आरंभ कर दिया था। गुप्त जी के परम मित्र और हिन्दी बंगवासी के प्रधान संपादक 'अमृतलाल चक्रवर्ती' ने गुप्तजी की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' की भूमिका में हिन्दी गद्य में गुप्त जी के योगदान की चर्चा की है। गुप्तजी अपनी असामयिक मृत्यु के कारण हिन्दी भाषा पुस्तक पूरी न कर सके। उनकी मृत्यु के पश्चात यह पुस्तक छपी तो उसकी भूमिका में श्री अमृतलाल चक्रवर्ती ने लिखा -

''हिन्दी बंगवासी में पूर्व भाषा की काया पलट हो गई थी। उस समय के व्यक्तियों को भाषा के प्रतिनिधि इसलिए मानना पड़ता है कि तब तक हिन्दी के आधुनिक साहित्य का सांचा प्रायः उन दिनों के लेखकों के मस्तिष्क में ही था।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.86

2 सं. कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्याकंन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता 1965, पृ. 133-134

हिन्दी बंगवासी में भाषा निर्णय के लिए हमारी लड़ाई ऐसी गहरी होती थी कि किसी किसी दिन सारी रात बीत जाती थी। किस प्रान्त के किस शब्द को कहाँ जोड़ने से भाषा का समुचित लालित्य होगा, इस पर बड़ी जोरदार बहस होती थी। पं. बदरीनारायण चौधरी 'हिन्दी बंगवासी' को भाषा गढ़ने की टकसाल बतलाते थे। उस टकसाल का कोई सिक्का बाबू बालमुकुंद की छाप के बिना नहीं निकलता था।"[1]

बाबू बालमुकुंद गुप्त अमृतलाल चक्रवर्ती और प्रभुदयाल पाण्डेय ने मिलकर हिन्दी बंगवासी में कार्य किया था। अमृतलाल चक्रवर्ती ने आगे इसी संस्करण में लिखा है "तीनों के नव यौवन का प्रायः सारा आवेग हिन्दी भाषा को सुघड़ बनाने में ही खर्च होता था। किसी किसी दिन एक ही शब्द के पीछे दो-तीन बजे रात तक तीनों में कठिन लड़ाई होती थी।"[2] गुप्त जी ने हिन्दी के स्वरूप को सरल, सहज और सुघड़ बनाने के लिए दिन-रात प्रयास किया। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने की उनकी तमन्ना थी। वे भाषा का संबंध किसी धर्म से नहीं मानते थे। डॉ.के.सी. यादव का गुप्त जी के बारे में कहना है- "हिन्दी, संस्कृत के शुद्ध, कठिन आदि शब्दों की बजाय आम आदमियों द्वारा बनाए उनके स्थानीय रूपों को वरीयता दी। साथ ही उसमें अन्य भाषाओं तथा बोलियों के उचित शब्दों को भी अपनाया और अपनाने की सलाह दी। ऐसा करने से उनका मानना था, हिन्दी गैर हिन्दी लोगों के लिए भी सहज होगी दूसरे, उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि हिन्दी के उद्गम तथा विकास में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई हर धर्म के लोगों का योगदान रहा है। और इसलिए यह राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारी होगी।"[3]

---

1 (सं.) के.सी. यादव, हिन्दी भाषा, गुप्त ग्रंथमाला-1, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा, काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ. 10 (प्रस्तावना से)

2 (सं.) के.सी. यादव, हिन्दी भाषा, गुप्त ग्रंथमाला-1, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा, काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ. 42

3 के.सी. यादव, हिन्दी भाषा, गुप्त ग्रंथमाला-1, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा, काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ. 13 (प्रस्तावना से)

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने हिन्दी गद्य का रूप तैयार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त जी की रचनाएँ दो युगों का प्रतिनिधित्व करती है। डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव का कहना है, ‘‘साहित्य सर्जना के सन्दर्भ में शिल्प विधि के विधान के अनेक प्रयत्न इस युग में हो रहे थे। गद्य (और पद्य) में खड़ी बोली हिन्दी स्वीकृत हो चुकी थी, परन्तु उसमें सबल तथा प्रौढ़ अभि व्यंजना शक्ति की अवतारण न हो सकी थी। उसमें प्रवाह गत और साधारणीकरण की क्षमता न आ सकी थी। इन दृष्टियों से जिन निबन्धकारों ने हिन्दी गद्य को एक सुनिश्चित रूप योजना दी, उनमें बालमुकुंद गुप्त का स्थान सर्वोपरि है।’’[1]

गुप्त जी की रचनाओं का प्राणतत्व भारतेन्दु युगीन है तो शरीर द्विवेदी युगीन इन्होंने सभी प्रकार के निबंध लिखे जिसमें इन्होंने अपने युग की झांकी प्रस्तुत की है। नवजागरण की उत्कर्ष में बालमुकुदं ने भी अपना योगदान दिया और इसे एक नयी गति प्रदान किया। इस समय गद्य और पद्य में भी नई जागृति आ रही थी। ब्रज भाषा अपने पुराने रूप को छोड़कर हिन्दी के नए रूप में ढल रही थी। गुप्त जी ने भाषा में अभिनव प्रयोगों के माध्यम से हिंदी गद्य एवं पद्य का मार्ग प्रशस्त किया।

## 4.5 हिन्दी का आलोचनात्मक विवेक

‘‘आलोचना की रीति अभी हिन्दी में भली-भाँति जारी नहीं हुई है और न लोग उसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठाक समझे हैं। इससे बहुत से लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं और बहुतों को वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदान में कदम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना होते देखकर वहीं तुर्शरू हो जाते हैं। इससे हिन्दी आलोचना करना भिड़ के छत्ते को छेड़ लेना है। छेड़ने वाले को चाहिये कि बहुत सी भिड़ों के डंक सहने के लिए प्रस्तुत रहे।’’[2]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शत वार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965 पृ. 138

2 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ. 70

ये पंक्तियां बाबू बालमुकुंद गुप्त ने 'व्याकरण विचार' नामक लेख में 'भारतमित्र' (1906) के अंक में लिखी थी। हिन्दी आलोचना की उस समय की परिस्थितियाँ इस लेख से स्पष्ट हो जाती हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण व्यक्तिगत गुण-दोष निकालने की प्रवृत्ति भी बढ़ी। भारतेन्दु युग में आलोचना मुख्यतः पं. बालकृष्ण भट्ट तथा पं. बदरीनाथ चौधरी तक ही सीमित मानी जाती थी। भाषा संबंधी न्यूनताएँ अशुद्धियाँ एवं अनुवाद संबंधी त्रुटियाँ आदि ही आलोचकों द्वारा मुख्यतः विवेच्य मानी जाती थीं। गुप्तजी मूलतः पत्रकार और निबंधकार थे, किन्तु आलोचना के क्षेत्र में भी वे अपने युग के मुख्य आलोचकों में से एक थे। उनकी पहली आलोचना 'श्रीधर पाठक' की 'उजड़ग्राम' की है, जो उर्दू साप्ताहिक 'कोहेनूर' में 1888 में प्रकाशित हुई थी। इस आलोचना में जहाँ उन्होंने श्रीधर पाठक की प्रतिभा की प्रशंसा की, वहीं उर्दू भाषा के सामने हिन्दी भाषा की शक्ति का परिचय दिया। जिस युग में आलोचना की शक्ति स्वस्थ और वैज्ञानिक न्यायपूर्ण नहीं थी, वहाँ गुप्तजी श्रीधर पाठक जैसे नवीन लेखकों को प्रोत्साहित कर रहे थे, दूसरी तरफ प्रतिक्रियावादी शक्तियों को मुहँ तोड़ जवाब दे रहे थे। पटना निवासी सुशील जी ने उजड़ गाँव, साधु तथा यात्री नामक रचनाएँ सन् 1899 में गुप्त जी के पास आलोचना के भेजी थी। गुप्त जी ने देखा कि ये कृतियाँ श्रीधर पाठक की कृतियों की नकल मात्र थी। तो उन्होंने कविता पर कविता' शीर्षक निबंध लिखा। इसमें उन्होंने लिखा- ''हमने देखा कि सुशील जी की दोनों पुस्तकें पाठक जी की पुस्तकों की सही नकल के सिवाय और कुछ नहीं है। नकल क्या एक बात की है? रंग में, ढंग में, छन्द में सब में नकल ही नकल मौजूद हैं। यदि न्याय से देखा जाए तो सुशील जी ने अच्छे कवियों के करने योग्य काम नहीं किया।...हम चाहते हैं कि हमारे देश के सुलेखक और कवि दूसरे देश के सुलेखक और कवि के जूठे पर गिरने की आदत छोड़े।''[1]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. 155

गुप्त जी ने आलोचना में सदैव सदभावना और उच्च विचारों को ही साहित्य का मापदण्ड माना है। जिन कृतिकारों की रचनाओं में इन तत्वों की अवहेलना या उपेक्षा पाई उन्हें वे अपना समर्थन नहीं दे पाए। रचना से अधिक रचनाकार के मानसिक संकल्प को अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। साहित्यिक कृतियों में परम्परा संस्कार और आदर्श को संरक्षण देते थे। इसी के कारण उन्होंने किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' और बंगला के अनूदित उपन्यास 'अश्रुमती' की आलोचना की। 'अश्रुमती' की आलोचना में गुप्त जी आवेश वश कहीं-कहीं अधिक भावुक हो गए है। इस कृति में महाराणा प्रताप की कल्पित पुत्री अश्रुमती और अकबर के पुत्र सलीम की प्रणयकथा की कल्पना की गई है। गुप्त जी ने इस पुस्तक को पाप भरी पुस्तक कहा है। परन्तु सिर्फ भावुकता वश ही नहीं, उन्होंने तर्क, इतिहास और संस्कृति के सन्दर्भ में कृति की सार्थकता का परीक्षण किया। गुप्त जी कहते हैं- ''हम बंगदेश के पढ़े-लिखे लोगों से पूछते हैं कि इस पुस्तक को पढ़कर बंगदेश की लड़कियों को क्या शिक्षा मिलेगी? और आप सब बंगाली लोग न्याय से कहें कि आप ही को उससे क्या उपदेश मिला?''[1]

गुप्त जी की आलोचना से प्रभावित होकर अनुवादक मुंशी उदित नारायण जी ने अनुवाद की समस्त प्रतियों गंगाजी में फेंक दी थी। 1901 में गुप्तजी ने भारतमित्र में मूल बंगला नाटक (अश्रुमती) की उग्र आलोचना की। गुप्त जी की आलोचना से प्रभावित होकर मूल नाटक बंगला के लेखक श्री ज्योतिरिन्द्र ठाकुर (रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बडे भाई) अपनी भूल स्वीकारी। ''गुप्तजी ने 5 अक्टूबर 1901 के भारतमित्र में अश्रुमती कर्त्ता का प्रतिवाद तथा आनन्द समाचार नाम से उक्त दोनों पत्र छाप दिये और ठाकुर महाशय को अपनी भूल स्वीकार करने के लिए धन्यवाद भी दिया।''[2]

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ.143

2 (सं.) कल्याण मल लोढ़ा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त, एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. 95

श्री किशोरी लाल गोस्वामी के 'तारा' उपन्यास का विरोध भी उन्होंने उसकी मर्यादा हीनता के कारण किया था। इस उपन्यास में अर्जुन की कामना अपनी भांजी का विवाह एक मुसलमान के साथ करने की है, और दारा-जहाँ नारा के भाई-बहन होने के बावजूद भी कामुकता पूर्वक वार्तालाप दिखाया गया है। इसी अमर्यादापूर्वक आचरण के कारण गुप्तजी ने इसकी भर्त्सना की है। "हम नागरी प्रचारिणी सभा को सावधान करते हैं कि यदि सचमुच वह हिन्दी की उन्नति चाहती है, तो सबसे पहले तारा पढ़े और गोस्वामी जी महाराज को उनकी पुस्तक के गुण-दोष समझावे कि कैसा गन्दा और भयानक काम कर रहे हैं।"[1]

गुप्त जी ने सदैव हिन्दी के शुद्ध और सरल रूप अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने न तो भाषा के संस्कृत निष्ठ रूप पर जोर दिया और न ही देहाती रूप पर। इसी के चलते उन्होंने हरिऔध कृत 'अधखिला फूल' की गद्य शैली की आलोचना की। परन्तु उन्होंने इसकी कहानी की प्रशंसा भी की और कुछ शब्दों के अतिरिक्त भाषा की प्रशंसा की। भाषा की सरलता के लिए उसे कृत्रिम रूप से न लादा जाए। इसीलिए उन्होंने 'अधखिला' फूल की भाषा की आलोचना की। "हम ठेठ हिन्दी के तरफदार नहीं ठेठ हिन्दी का हमारी समझ में कुछ अर्थ भी नहीं।...

हमारे लिए इस समय वहीं हिन्दी अधिक उपकारी है, जिसे हिन्दी बोलने वाले तो समझ ही सकें उनके सिवाय उन प्रान्तों के लोग भी उसे कुछ न कुछ समझ सकें जिनमें वह नहीं बोली जाती।"[2]

अधखिला फूल की आलोचना में गुप्त जी कहीं-कहीं ज्यादा आक्रामक हो बैठे हैं, जैसे उपाध्याय जी ने आकास (आकाश), पच्छिम (पश्चिम), मिट्टी आदि देहाती शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु गुप्त जी के अनुसार अकास, अंधियारा, मिट्टी या

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ. 157-158
2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ. 159-162

माटी आदि शब्द ठेठ भाषा के हैं क्योंकि ये ब्रज भाषा में हैं। परन्तु जिन शब्दों का उपाध्याय जी ने प्रयोग किया है वे शायद उनके क्षेत्र के हों।

गुप्त जी ने 'पंखा हांकना' और 'घर की छतों पर ठण्डा होना' गलत माना है, जबकि क्षेत्रीय बोली में यह गलत नहीं है। गुप्त जी ने 'हांकना' का अर्थ 'जानवरों का हाँकना' लिया है, जो हरियाणा में प्रयुक्त होता है। गुप्त जी के अनुसार 'ठण्डा हो जाना' 'आदमी का मरना' है, परन्तु उपाध्याय जी ने ठण्डा हो जाने का अर्थ 'शीतल हो जाना' लिया है।

परन्तु गुप्त जी की आलोचनाओं की इन कमियों की वजह से उनकी आलोचनाओं की विश्वसनीयता में कमी नहीं आती। वे एक सच्चे और खरे आलोचक थे। दूसरों की आलोचना करते थे, तो स्वयं की भी आलोचना सुनने का साहस भी उनमें था। एक बार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनकी 'खिलौना' पुस्तक की आलोचना की, बिना यह जाने कि यह पुस्तक गुप्त जी की लिखी हुई है परन्तु जानने पर उन्होंने क्षमा मांगी। गुप्त जी ने इसका जवाब देते हुए कहा :-

''पोथी मित्र की हो या शत्रु की अपने की हो या बेगाने की, आलोचना उसकी न्याय से होनी चाहिए। यह तो कोई बात नहीं कि मित्र की हो तो उसकी प्रशंसा की जाए और शत्रु की हो तो निन्दा इतनी अनुदारता लेकर साहित्य के मैदान में कभी आगे न बढ़ना चाहिए।''[1]

यह गुप्त जी का आलोचना संबंधी सिद्धान्त था, जिसका उन्होंने सभी आलोचनाओं में पालन किया। गुप्त जी बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। प्रशंसा के स्थान पर प्रशंसा और असहमति के स्थान पर असहमति व्यक्त करते थे। गुप्त जी की दृष्टि में आलोचना की सफलता के लिए उसका विकसित स्वरूप होना आवश्यक है। एक आलोचक का तटस्थ होना अति आवश्यक है। तुलसी सुधाकर की आलोचना में उन्होंने

---

1 (सं.) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-8, खिलौना, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, हरियाणा, 2012, पृ.11 (सम्पादकीय से)

सुधाकर द्विवेदी की प्रशंसा और कमियाँ दोनों ही बताई हैं। तुलसी सुधाकर की जो बात उन्हें सबसे ज्यादा खटकी थी, वह थी उसकी क्लिष्टता। सुधाकर जी ने 'तुलसी सतसई' का अनुवाद किया था। परन्तु वे उसे सरल नहीं बना पाए। इसी पर गुप्त जी ने कहा है :- ''तुलसी ने जहाँ कोई बड़ा कूट दोहा लिखा है, सुधाकर जी महाराज ने वहां महाकूट कुण्डलिया बनाई हैं कहीं-कहीं तुलसी का दोहा सरल है, वहां भी सुधाकर जी टेढे चले हैं।''[1] परन्तु सिर्फ दोष दिखाना ही आलोचक का काम नहीं होता दोष के साथ गुण दिखाने में आलोचक को कंजूसी नहीं बरतनी चाहिए। इसीलिए गुप्त जी ने द्विवेदी जी प्रशंसा करते हुए कहा है :- ''इसमें कुछ सन्देह नहीं कि द्विवेदी जी महाराज को इस रचना में बड़ा भारी परिश्रम और बड़ा भारी कष्ट हुआ होगा। उन्हें महीनों नहीं तुलसी के दोहों का अर्थ लगाते वर्ष बीत गए होंगे। उस पर अपनी रचना करने में कुछ कम दिन नहीं लगे होंगे।''[2]

गुप्त जी की आलोचना का मुख्य बिंदु यह भी है कि उन्होंने साहित्य की चोरी करने वालों को फटकारा था। पटना के सुशील कवि ने जब श्रीधर पाठक की अनुवादित कृति की नकल की तो गुप्तजी ने उन्हें कड़ी फटकार लगाई। परन्तु जब 'प्रवासी' नामक बंग भाषा के पत्र ने नकल करने पर हिन्दी पत्रों का मजाक उड़ाया तो गुप्त जी के स्वामिभमान पर चोट पहुँची, तो उन्होंने 'प्रवासी की आलोचना' और 'बंगला साहित्य' नामक लेख लिखकर बंगाली लेखकों की असलियत सामने लाई। उन्होंने प्रमाण देकर सिद्ध किया कि बंगला के बंकिम बाबू, दिनेन्द्र कुमार राय, उपेन्द्रनाथ मुखर्जी, प्रियनाथ मुखर्जी जैसे लेखक अंग्रेजी पुस्तकों की नकल करते हैं गुप्त जी लिखते हैं :- ''प्रवासी ने शायद ध्यान न दिया हो, पर हमने बंगाल में रहने से कुछ-कुछ दिया है? बंगालियों के लिखे बहुत से नाटक उपन्यास, मासिक पत्रों के लेख और कविताएं अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं के तरजुमें खाके और चोरी हैं।

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ.149
2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ.150

सहयोगी 'प्रवासी' जरा सा इधर ध्यान देगा तो 'बूढ़े मुँह मुँहासे' की सी दरजनों पोथियां ढंग भाषा में पावेगा। अवश्य बंगभाषा ने उन्नति की हैं। पर पराई रकाबी के उच्छिष्ट बिस्कुट ही उसके पेट में अधिक है और भरते जाते हैं। अभी बंगालियों की अपने मगज से निकली हुई बातों का कम संग्रह है। जो बंगभाषा के धुरन्धर लेखक हैं उन्हीं की पूँजी में अधिक पराया माल है।"[1]

गुप्त जी ने सिर्फ आलोचना ही नहीं कि अपितु नवीन लेखकों को प्रोत्साहित भी किया। स्वयं नवीन प्रयोग किए और दूसरे को करने के लिए प्रेरित किया। सन् 1901 में भारतमित्र के 'तेईसवां वर्ष' शीर्षक अपने लेख में गत वर्षों के हिन्दी पद्य की चर्चा की और हिन्दी कवियों को अपना ध्यान श्रृंगार रस से हटा कर अन्य किसी दिशा में आकर्षित करने को प्रेरित किया। इसी क्रम में उन्होंने 'श्रीधर पाठक' और 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' की प्रशंसा की है। गुप्त जी ने कहा है- "हिन्दी पद्य की कुछ चर्चा भारतमित्र में गत वर्ष (सन् 1900 ई0) में हुई। उससे कम से कम इतना हुआ कि हिन्दी के कवि अपने लिए एक पथ निकाल सकते हैं। परन्तु अपने जी में इतना समझ रखें कि प्यारी कि विरह-व्यथा-वर्णन और नायिका भेद बताने का समय अब नहीं है। पिछले कवि उक्त विषय में जो कुछ कर गये हैं, वह कम नहीं है। इस समय के कवि उनकी नकल करके नाम नहीं पा सकते। अब दूसरा मार्ग तलाश करना चाहिए। हम पं. श्रीधर पाठक तथा पं. महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का हृदय से धन्यवाद करते हैं। हिन्दी पद्य को पथ पर ले जाना आप जैसे लोगों ही का काम है।"[2]

गुप्त जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविताएँ हिन्दोस्थान, हिन्दी बंगवासी और भारतमित्र में निरन्तर प्रकाशित करते रहे, परन्तु उनकी भाषा की क्लिष्टता का उन्होंने सदैव विरोध किया।

श्री विष्णुकान्त शास्त्री ने 'बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन' पुस्तक में गुप्त जी की आलोचनाओं को तीन भागों में बाटा है। 1. परिचयात्मक आलोचना, 2. विषयवस्तु

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त, संकलित निबंध राष्ट्रीय, पुस्तक न्यास, 2014, पृ.152

2 उद्धृत (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रन्थ, गुप्त स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950, पृ. 120

संबंधी आलोचना, 3. भाषा संबंधी आलोचना। प्रथम तरह की आलोचनाओं में पुस्तक का संक्षिप्त परिचय, अपना मत और ग्रन्थकार के लिए सुझाव हुआ करता था।

भारतमित्र में सामयिक स्तंभ के नाम से स्तंभ प्रकाशित होता था, जिसमें पुस्तकों रचनाओं आदि की आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। उजड़ ग्राम, तुलसी सुधाकर अधखिला फूल, गुलशने हिन्द आदि की आलोचनाएँ इसी वर्ग के अन्दर आती हैं दूसरे वर्ग की आलोचनाओं में अश्रुमती, तारा, तेईसवें वर्ष आदि आती है। तीसरे वर्ग की आलोचनाओं में महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुआ भाषा विवाद 'भाषा की अनस्थिरता (1-10), व्याकरण विचार, हिन्दी में आलोचना, आत्मासमीय टिप्पणी, शेष शब्द का विवाद आदि आते हैं।

गुप्त जी ने साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण सिद्धान्त नहीं प्रस्तुत किया, परन्तु भाषा संबंधी वाद-विवादों में उनका स्थाई महत्त्व आज भी उतना है जितना कि उस समय था। हिन्दी भाषा की आलोचना में जितना उन्होंने कार्य किया वह तत्कालीन परिस्थितियों और आलोचना के मार्ग को प्रशस्त करने में बहुत ही उल्लेखनीय है। हिन्दी आलोचना का विकास ऐसे ही विवेक ग्राही विद्वानों की लेखनी का प्रतिफलन है जो आगे चलकर आचार्य शुक्ल के यहाँ विकास समान होता हुआ दिखायी पड़ता है। हिन्दी समीक्षा और आलोचना का मार्ग इन्हीं साहित्यकारों के साहस से संभव हुआ।